दुनिया एक विराट बंदीगृह

जय प्रकाश

सूक्ष्म जीवअॅ और मनुष्य के बीच सदैव रिश्ता रहा है। वे हमारा जीवन सँवारते और बिगाड़ते भी हैं। वे सर्वव्यापी हैं। सम्पूर्ण पृथ्वी उनका घर है। मनुष्य की देह भी उनका घर है। कभी-कभी जब उनके भीतर कोई अँदरूनी जैविक हलचल (म्यूटेशन) मचती है तो वे जैसे विक्षिप्त हो उठते हैं और घर को ही उजाड़ देते हैं।

कोरोना अपने नये अवतार, कोविड'19 में इस बार अपने ही घर, यानी मानव-देह पर आक्रमण कर उसे नष्ट कर रहा है। दूसरी तरफ़ अपनी देह को बचाने के लिये मनुष्य घर में बंद हो जाने को विवश है।

घर आज केंद्रीय पद है

कोरोना की इस आपदा के बीच 'घर' केंद्रीय पद की तरह उभरा है। कोरोना ने सारे संसार के लोगअॅ को अकस्मात घरअॅ में क़ैद कर दिया। पूरी दुनिया को उसने एक विराट बन्दीगृह में तब्दील कर दिया। बल्कि यह कहना ग़लत न होगा कि उन्नति के शिखर पर जा पहुँची मानव-सभ्यता सहसा अपने आप ही बंदीगृह बन गयी। क्या विडंबना है कि मनुष्य अपनी ही रची सभ्यता का क़ैदी हो कर रह गया है। घर अब सभ्यता की चारदीवारी है जिसके भीतर नागरिक को इस कोरोना-काल में एक तरह के पारिवारिक पृथकवास में बलात भेज दिया गया, जबकि यही घर अपनी जीविका कमाने सैकडअॅ मील दूर से लौट रहे मज़दूरअॅ के लिए शरणस्थली हुआ था। ये मज़दूर उन शहरियअॅ-पूंजीपतियअॅ की निष्ठुरता से मुक्ति की आशा लेकर घर की सुरक्षा की तरफ़ लौट रहे थे, जिन्हअॅने उनके श्रम का निर्मम दोहन किया, लेकिन संकट आने पर बेसहारा छोड़ दिया। अपने मूलस्थान से हज़ारअॅ मील दूर मेहनत और जिजीविषा से बसाया उनका दुघेरा (दूसरा घर जो सिर्फ़ सीमेंट-कंक्रीट से नहीं बना है) बिखर गया और वे हताशा में अपने घर लौटने लगे।

यह पुरखअॅ का रचा घर था जिसके भीतर चार दीवारअॅ में सहेजी सुरक्षा-भर नहीं थी। उसमें स्मृति, परंपरा और सांस्कृतिक ऊष्मा से भरी आश्वस्ति थी। महामारी की अफरातफरी के बीच घर सापेक्षिक और विडंबनात्मक पद बन चुका था। शहरी मध्यवर्ग घर की क़ैद से मुक्त होने की छटपटाहट महसूस कर रहा था जबकि प्रवास में मज़दूर पेट की आग बुझाने का ज़रिया छिन जाने के कारण घर लौटने के लिए छटपटा उठा था। एक को घर से बाहर निकलने की बेचैनी थी, दूसरे को घर पुकार रहा था। जो घर में क़ैद थे, उन्हें आज़ादी चाहिए थी ; लेकिन अदम्य जिजीविषा की ऊर्जा लिए घर की ओर पैदल भागते और अस्तित्त्व के लिए जूझते लोग अपने प्राणअॅ की रक्षा के अलावा भला और क्या चाहते थे? वे अपनी मिट्टी की गंध की ओर लौट चले थे। उस गंध को साँसअॅ में भर लेना चाहते थे।

भय के साम्राज्य में जैव राजनीति

उधर राष्ट्रव्यापी तालाबंदी के दौरान जबरिया घरबंदी में नागरिकअॅ की सामाजिकता और स्वतंत्रता की चौहद्दी तय कर दी गई थी। यह चौहद्दी घर की चार दीवारअॅ से परे नहीं थी। विचरण की ही नहीं, विचार की स्वतंत्रता भी अब सीमित या बहुत हद तक प्रतिबंधित थी। सोशल मीडिया पर मिली आज़ादी ऊपर से वैचारिक स्वतंत्रता की तरह मालूम पड़ती थी, लेकिन उसमें प्रसारित सूचनाओं की दिशा, मंतव्य और पैटर्न पर ग़ौर करें तो वर्चस्व की शक्तियअॅ के द्वारा उनके अनुकूलन और नियंत्रण का दबाव स्पष्ट नज़र आता था। सब-कुछ अब राज्य के नियंत्रण में था, या फिर कोरोना के नियंत्रण में, जिसके बारे में सोचने से किसी को निजात नहीं थी। मिशेल फूको के शब्दअॅ में कहें तो राज्य को अपनी जैवसत्ता (बायो पॉवर) और जैव राजनीति (बायो पॉलिटिक्स) के

प्रसार का अवसर मिल गया जिसके ज़रिये वह नागरिकअॅ के जीवन पर नियंत्रण स्थापित कर सकता था। फूको की नज़र में जैव राजनीति एक सत्तामूलक तर्कविधि है जिसके ज़रिये आधुनिक राज्य सुशासन और व्यवस्था कायम करने के नाम पर जनता के ऊपर आधिपत्य थोपता है। अगर नागरिकअॅ की दिनचर्या पर राजसत्ता की पाबंदी हो तो कहना होगा कि जैव राजनीति का तर्क यहाँ असंदिग्ध रूप से सक्रिय है।

तालाबंदी में भय के साम्राज्य के अधीन रहते हुए नागरिक यदि राजसत्ता के स्वेच्छाचार की अनदेखी करे और आज्ञानुवर्ती नागरिक बन जाए तो क्या आश्चर्य। भारतीय नागरिक इतना आज्ञापालक कभी नहीं रहा; वरना तालाबंदी में वह न ताली बजाता, न दिए जलाता, न घर में क़ैद रहता। हंगरी में तो कोरोना की आड़ लेकर प्रधानमंत्री ओरबन ने संसद में एक विधेयक पारित करवा लिया जिसके तहत उन्हें आजीवन सत्ता में बने रहने का अधिकार मिल गया। पुष्ट बहुमत के आधार पर पारित इस विधेयक का कोरोना-काल में विरोध नहीं हुआ। लोकतांत्रिक शक्ति के दुरुपयोग का इससे मिलता-जुलता उदाहरण रूस में देखने को मिला जहाँ पुतिन ने राष्ट्रपति के रूप में अपना कार्यकाल 2036 तक सुनिश्चित कर लिया है। ज़ाहिर है, नागरिक तो राज्य के आगे लगभग आत्मसमर्पण कर चुका है। या तो वह बेबस है या आज्ञाकारी है। अथवा उसे आज्ञाकारी बना दिया गया है।

उपभोग के नये इलाक़े : सूचना के उपभोक्ता

आर्थिक उदारीकरण के चलते पिछली सदी के अंतिम दशक में वैश्विक बाज़ार के फैलाव के साथ नागरिक को उपभोक्ता में बदलने का वैश्विक प्रोजेक्ट शुरू हुआ था, तभी से उससे अपेक्षा की जाने लगी थी कि वह राज्य या कि बाज़ार का आज्ञानुवर्ती बना रहे और असहमति के अधिकार को राज्य के पास गिरवी रख दे। अधिक-से-अधिक उसका असंतोष उपभोक्ता-अधिकारअॅ के लिए संघर्ष तक सीमित रहे। कोरोना-काल के पृथकवास में घर के भीतर क़ैद व्यक्ति औपचारिक तौर पर तो राज्य का अनिवार्य घटक यानी नागरिक था, लेकिन उसकी नागरिकता एक तरह से निलंबित थी। उपभोक्ता होने का दिलासा जो उसे दिया गया था, वह भी तालाबंदी में स्थगित रहा। उसके लिए स्वतंत्र उपभोग का अधिकार भी निलंबित था। क्यअॅकि घर अब नागरिक के कार्यकलाप की सीमा-भर नहीं था, वह उपभोक्ता समाज की भी चौहद्दी बन गया। निर्बंध उपभोग के अभ्यस्त हो चुके वैश्विक समाज की उपभोग की स्वतंत्रता ही न रही तो उसका जीवन कैसे कटे।

इस नियंत्रित या निलंबित नागरिकता में अब उसके सामने एक नई तरह का उपभोक्ता बनने का विकल्प था। इसलिए उपभोग-कर्म अब एक नए आयाम में घटित होने लगा। वस्तुओं का उपभोग सीमित होने के कारण वह सूचना के अधिकाधिक उपभोग की तरफ प्रवृत्त हुआ। वह भौतिक रूप से घर में क़ैद था लेकिन अंतहीन डिजिटल स्पेस में विचरण करने की स्वतंत्रता उसे दे दी गयी थी। यहाँ अपार-अकूत सूचनाएँ थीं। कोरोना ने सूचना का अंबार लगा दिया। दरअसल कोरोना भी अपने-आप-में एक सूचना की तरह आया। लेकिन बहुत जल्द ही कोरोना विषाणु के जैविक म्यूटेशन की तरह उससे सम्बंधित सूचना के म्यूटेशन का रास्ता खुल गया। अब सूचनाएँ कोरोना के बारे में उसके के नए-नए रहस्य उद्घाटित होने के दावअॅ के साथ आने लगी। अख़बार, टेलीविज़न और सोशल मीडिया कोरोना की सूचनाओं से बजबजा उठे। डिजिटल माध्यम से अहर्निश आ रही ये सूचनाएँ देखते-देखते महामारी की तरह फैलने लगीं। कोरोना-महामारी और सूचना-महामारी ने मनुष्य के अंतर्जगत को एक साथ संक्रमित कर डाला है। आज कोरोना मनोभीति (पैरानोइया) की तरह छा गया है। कहना मुश्किल है कि यह कोरोना की वजह से या कोरोना की सूचनाओं की वजह से पैदा हुआ पैरानोइया है।

इस तरह कोरोना ने अपना निजी सूचना-मंडल (इन्फो स्फीयर) बनाया जिसमें सूचनाएँ तो थीं, मग़र उनमें ठोस, निश्चयात्मक और सुस्पष्ट कुछ भी नहीं था। वे अनिश्चय, अटकलअॅ और रहस्य में लिपटी हुई आ रही थीं। सूचना का उपभोक्ता दैनिक जिज्ञासा के साथ उसे ग्रहण कर रहा था। इन सूचनाओं में क्रिकेट के बदलते स्कोर की तरह उत्सुकता जगाता कोरोना मीटर था जिसमें देश-दुनिया में संक्रमण और मौत के लगातार बढ़ते आँकड़े थे, दुनिया-भर की प्रयोगशालाओं में कोरोनारोधी टीके बनाने के प्रोजेक्ट्स की गतिविधियाँ थीं, संक्रमण से बचाव के उपायअॅ की जानकारी थी, कोरोना-संक्रमण के शिकार और उनसे मुक्त हुए लोगअॅ की कहानियाँ थीं,

तालाबंदी काटते लोगअॅ के अनुभव थे, अस्पतालअॅ के कुप्रबंध की जानकारियाँ थीं, मरते लोगअॅ की दुर्दशा की दास्तान थी और कोरोना के इर्द-गिर्द के न जाने कितने वृत्तांत थे। इनके अलावा घरबंदी में सम्बंध-संपर्क, सन्देश, शिक्षा, मनोरंजन, ख़रीद-फ़रोख़्त, सांस्कृतिक कार्यकलाप आदि से सम्बंधित तमाम मानवीय गतिविधियाँ थीं जो अन्यथा आभासी नहीं, वास्तविक रूप में घटित होतीं। इन सबने रातअॅ-रात एक सूचनापेक्षी समाज निर्मित कर डाला जहाँ उपभोक्ता की दिनचर्या में डिजिटल सूचनाओं की आवाजाही अप्रत्याशित रूप से बढ़ गयी थी। ग़ौर करें कि इन सूचनाओं की गति इतनी तीव्र थी कि उन्हें पकड़ने की कोशिश में मुद्रित अख़बार एकबारगी हाँफने-से लगे। उनकी पृष्ठ-सँख्या कम हो गयी। लेकिन टेलीविज़न, सोशल मीडिया, ओटीटी प्लेटफ़ार्म, वेबसाइट, न्यूज़ पोर्टल, डिजिटल गेम आदि के ज़रिए सूचनाएँ निर्बाध प्रसारित होती रहीं और उनका बेरोक उपभोग जारी रहा। अब भी है।

(तीसरी और अंतिम क़िस्त अगले बुधवार को)